उभरते बाजार की चिंता :

भारतीय परिप्रेक्ष्य *

दुव्वुरी सुब्बाराव

* आइएमएफ-विश्व बैंक की वार्षिक बैठक के अवसर पर 5 अक्तूबर 2009 को इस्तांबुल में आयोजित जी-30 इंटरनैशनल बैंकिंग सेमिनार में डॉ.दुव्वुरि सुब्बाराव, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा की गयी टिप्पणी।

1. उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं (ईएमई) के परिप्रेक्ष्य में और खासकर भारत के लिए मैं पांच चिंताओं पर प्रकाश डालना चाहूंगा। ये हैं : पहली, खाद्य-कीमत जन्य बढ़ती मुद्रास्फीति, लेकिन अभी भी दुर्बल वृद्धि, के संदर्भ में समर्थनकारी मौद्रिक नीति से निकास का समय-निर्धारण; दूसरी, पूंजी प्रवाह में दूसरे उछाल की संभावना, विशेष रूप से यदि हम मौद्रिक समर्थनों को औरों के साथ वापस नहीं लेते हैं; तीसरी, मौद्रिक संचरण तंत्र, क्योंकि यह संकट अवधि से विकसित हो रहा है; चौथी, राजकोषीय समेकन की ओर लौटना और राजकोषीय समायोजन की गुणवत्ता; और अंत में वित्तीय समावेशन और वृद्धि के संबंध में वित्तीय स्थिरता के लिए किये गये प्रयासों के निहितार्थ।

भारतीय अर्थव्यस्था के अनोखे लक्षण

2. इसके पहले कि मैं इन मुद्दों पर बात करूं, मैं कुछ ऐसे लक्षणों की ओर इंगित करना चाहता हूं, जो भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए अनोखे हैं। मेरा विश्वास है कि ये लक्षण उभरते बाजार की चिंताओं के संबंध में मेरी टिप्पणियों को समझने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

3. भारतीय अर्थव्यवस्था के अनोखे लक्षण क्या हैं, जो इसे अन्य ईएमई से अलग करते हैं ? पहला, हमारी वृद्धि घरेलू मांग- उपभोग और निवेश- दोनों से प्रेरित होती है। भारत में उपभोग और बचत भलीभांति संतुलित हैं। भारत में जीडीपी में निजी अंतिम उपभोग व्यय का हिस्सा लगभग 55 प्रतिशत है। हमारी बचत दर 37.7 प्रतिशत और निवेश दर 39.1 प्रतिशत है।

4. दूसरा, हमारे जुड़वां घाटे हैं - राजकोषीय और चालू खाता घाटा। हम संकट के पूर्व राजकोषीय समेकन के पथ पर थे, लेकिन उससे हट गये, क्योंकि संकट के कारण प्रति-चक्रीय व्यय करना आवश्यक हो गया। प्रमुख ईएमई के विपरीत, जिनके चालू खाते अधिशेष में हैं, हमारा चालू खाता घाटे में है। हालांकि चालू खाता घाटा संयत रहा है, फिर भी यह घाटा वर्ष 2008-09 में अधिक होकर जीडीपी के 2.6 प्रतिशत पर पहुंच गया, लेकिन वर्ष 2009-10 के दौरान इसके थोड़ा कम होने की उम्मीद है।

5. तीसरा, एक ओर घरेलू उपभोग और बचत के बीच सही संतुलन और दूसरी ओर प्रमुख क्षेत्रों में आधारभूत संरचना संबंधी बाधाओं (यथा, बिजली, सड़कें, शहरी आधारभूत संरचना और सामाजिक आधारभूत संरचना) को देखते हुए भारत तत्वतः एक आपूर्ति बाध्यता वाली अर्थव्यवस्था है। संकट के ठीक पहले आपूर्ति से संबंधित इस प्रकार की चिंताओं के करण यह विचार प्रकट किया गया कि अर्थव्यवस्था में ओवरहीटिंग हो सकती है। सामान्यतः दुर्बल बाह्य मांग के कारण कुछ बाह्य रूप से प्रेरित चक्रीय

मंदी की स्थिति बनी है। तथापि, जैसे-जैसे वैश्विक अर्थव्यवस्था में बहाली होगी, आपूर्ति बाध्यता के पुनः बंधनकारी होने की उम्मीद होती है।

6. हमारी अर्थव्यवस्था के अनोखे लक्षणों की इस पृष्ठभूमि में, आइए, मैं उन पांच चिंताओं की ओर रुख करूं, जिनके बारे में मैं चर्चा करना चाहता हूं।

पहली चिंता : समर्थनकारी मौद्रिक नीति से

निकास : वृद्धि बनाम मुद्रास्फीति

7. जबकि इस बात के लिए व्यापक सहमति है कि हमारे लिए वर्तमान अतिशय समर्थनकारी मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों से निकास की आवश्यकता है, लेकिन इस बात पर कम सहमति है कि है कि कब और कैसे निकास करें। बहाली के आरंभिक संकेत दिखाई पड़ने लगे हैं। औद्योगिक उत्पादन में पिछले दो महीनों में तेजी आयी है, लेकिन निर्यात-वृद्धि ऋणात्मक बनी हुई है। कारोबारी विश्वास सर्वेक्षण यह बताते हैं कि एक वर्ष पूर्व विश्वास ने जिस गर्त को स्पर्श किया था, उससे बहाली हो रही है, हालांकि विश्वास के स्तर पहले प्राप्त ऊंचाई से कम पर बने हुए हैं।

8. भले ही बहाली दुर्बल बनी हुई है, उपभोक्ता मूल्य मुद्रास्फीति (सीपीआइ) ऊंची खाद्य-कीमतों की पृष्ठभूमि में दो अंकों में है। जबकि हेडलाइन थोक मूल्य मुद्रास्फीति न्यून है (19 सितंबर 2009 को समाप्त सप्ताह में 0.84 प्रतिशत) - यह जून-अगस्त 2009 के दौरान ऋणात्मक भी हो गया था - सीपीआइ मुद्रास्फीति लगभग एक वर्ष से निरंतर ऊंची बनी रही है। हमारे मामले में ऊंची खाद्य-कीमतें अंशतः संरचनात्मक मांग-पूर्ति असंतुलनों का परिणाम हैं। इस समय चक्रीय कारक भी अपना काम कर रहे हैं। चालू मौसम में मानसून, जो 30 सितंबर को समाप्त हुआ, 1972 के बाद सबसे कमजोर मानसून रहा है। कृषि-उत्पादन में हानि होने की आशंका है और इसके चलते आने वाले महीनों में खाद्य-पदार्थों की कीमतों पर ऊर्ध्वमुखी दबाव होगा। अतः, खाद्य पदार्थों की ऊंची कीमतें संरचनात्मक और चक्रीय कारकों का मिश्रण हैं। जबकि खाद्यान्नों का सुरक्षित भंडार और बेहतर आपूर्ति व्यवस्था एक हद तक प्रतिकूल प्रभाव का शमन कर सकते हैं, आवश्यकता को देखते हुए आयात एक सहज समाधान नहीं है।

9. यद्यपि ऊंची खाद्य-कीमतों से उत्पन्न मुद्रास्फीति दबाव मौद्रिक नीति संबंधी कार्रवाई की गुंजाइश को सीमित कर दे सकते हैं, फिर भी मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं के निहितार्थ होते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रमुख उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के विपरीत, वृद्धि धनात्मक बनी हुई है। वास्तविक जीडीपी वृद्धि वर्ष 2008-09 में 6.7 प्रतिशत थी, और रिज़र्व बैंक के जुलाई 2009 के पूर्वानुमानों के अनुसार इसके 6.0 प्रतिशत रहने की उम्मीद है (ऊर्ध्वमुखी प्रवृत्ति के साथ)। देश-विशिष्ट लक्षणों के मद्देनजर हमारे लिए उन्नत अर्थव्यवस्थाओं से पहले ही समर्थनकारी मौद्रिक नीति से निकास आवश्यक हो सकता है। इसके लिए विकल्पों के सतर्क प्रबंधन की आवश्यकता होगी वृद्धि संबंधी चिंताओं के चलते विलंबित निकास अपेक्षित है, लेकिन मुद्रास्फीति संबंधी चिंता की मांग है कि निकास पहले होना चाहिए। मुद्रास्फीति संबंधी चिंताओं के संबंध में शीघ्र निकास से दुर्बल वृद्धि के पटरी से उतरने की संभावना हो सकती है, जबकि विलंबित निकास से मुद्रास्फीति की संभावना उत्पन्न हो सकती है।

दूसरी चिंता : बड़े और अस्थिर

पूंजी-प्रवाह का प्रबंधन

10. प्रमुख केंद्रीय बैंकों - यथा, यूएस फेड, ईसीबी, बीओई - ने अपनी वित्तीय प्रणाली को चलनिधि की अभूतपूर्व राशि से परिपूर्ण कर दिया है। वर्ष 2009 की पहली तिमाही तक यह चलनिधि जोखिम विमुखता के कारण अतिरिक्त आरक्षित निधि के रूप में केंद्रीय बैंकों में वापस पहुंच रही थी।

11. जोखिम के प्रति अभिरुचि अब लौट रही है। ईएमई में संविभाग निवेश में बहाली होने के संकेत हैं। उदाहरण के लिए, एफआइआइ द्वारा भारतीय इक्विटी बाजार में संविभाग निवेश 1 अप्रैल-18 सितंबर 2009 की अवधि में 13.6 बिलियन अमरीकी डालर था, जबकि वर्ष 2008 की तदनुकूल अवधि में 5.2 बिलियन अमरीकी डालर का बहिर्वाह देखा गया था, जो लगभग 19 बिलियन अमरीकी डालर का बदलाव प्रतिबिंबित करता है।

12. इसके अतिरिक्त, जैसाकि ऊपर नोट किया गया है, आरंभिक स्फीतिकारक दबाव को देखते हुए हमारे लिए नीति-दरों को उन्नत अर्थव्यवस्थाओं से पहले ही बढ़ाना पड़ सकता है। इसके परिणामस्वरूप बाजार दर अंतर के बढ़ जाने से पूंजी अंतर्वाह बढ़ सकता है। क्या पूंजी अंतर्वाह संयत होगा या उसकी बाढ़ आयेगी, जैसाकि वर्ष 2007 में हुआ था ? बाद वाली चिंता खासकर प्रमुख उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में प्रचुर चलनिधि को देखते हुए प्रासंगिक है। विनिमय दरों के लिए इसका निहितार्थ क्या होगा ? भारत में चालू खाता में संयत घाटा है; इसलिए बड़े और अस्थिर पूंजी प्रवाह समष्टिआर्थिक लागत आरोपित कर सकते हैं।

13. उभरते बाजारों के केंद्रीय बैंकों के पास पूंजी प्रवाह का प्रबंध करने के लिए तीन विकल्प हैं। पहला विकल्प यह है कि केंद्रीय बैंक विदेशी मुद्रा बाजार में हस्तक्षेप नहीं करे और विनिमय दर को समायोजन का भार वहन करने दे। क्या अनुचित विनिमय दर वृद्धि से चालू खाते के घाटे में और विस्तार नहीं होगा और इसका भावी धारणीयता के क्या निहितार्थ होगा? क्या विनिमय दर में वृद्धि मुद्रास्फीति को रोकने में मदद करेगी ? इन सारे प्रश्नों पर ध्यान दिया जाना होगा, यदि इस विकल्प को अपनाया जाता है।

14. दूसरा विकल्प यह है कि केंद्रीय बैंक विदेशी मुद्रा बाजार में हस्तक्षेप करे लेकिन निष्प्रभावीकरण से दूर रहे। ऐसे दृष्टिकोण में मौद्रिक एवं ऋण समुच्चयों में अत्यधिक वृद्धि का खतरा होता है, जो उच्च मुद्रास्फीति और ऋण एवं निवेश को उछाल की ओर ले जा सकता है और वित्तीय दुर्बलता का सृजन कर सकता है।

15. तीसरा विकल्प यह है कि हस्तक्षेप को निष्प्रभाव किया जाये। निष्प्रभावीकरण की पद्धति चाहे कोई भी हो, यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय तुलनपत्र के रूप में निष्प्रभावीकरण की वित्तीय लागत अंततः सरकार द्वारा वहन की जानी होगी, भले ही प्रत्यक्ष लागत अलग-अलग एजेंसियों द्वारा वहन की जा सकती है। अवरुद्ध हस्तक्षेप राजकोषीय दबाव को तीव्र कर सकता है, लेकिन इसका समष्टि वित्तीय स्थिरता के लाभों पर मूल्यांकन किया जाना आवश्यक होगा।

तीसरी चिंता : मौद्रिक संचरण

तंत्र को बाधामुक्त करना

16. लेहमैन ब्रदर्स के धराशायी होने के बाद वैश्विक आर्थिक दृष्टिकोण में तेजी से विकृति आयी और भारतीय अर्थव्यवस्था इसके संसर्ग से सभी माध्यम से प्रभावित हुई - वित्तीय सरणी, वास्तविक सरणी और विश्वास सरणी। रिज़र्व बैंक की संकट के प्रति अनुक्रिया में, जैसाकि अन्य केंद्रीय बैंकों के मामले में हुआ, परंपरागत और गैर-परंपरागत, दोनों प्रकार के उपाय शामिल थे।

17. नीतिगत ब्याज दरों में नरमी लाने की अनुक्रिया में और प्रचुर चलनिधि उपलब्ध कराये जाने से, बाजार दरों में महत्वपूर्ण रूप से कमी आयी। 10-वर्षीय केंद्र सरकार प्रतिभूतियों पर आय, जो अंत-सितंबर 2008 में 8.6 प्रतिशत थी, वह अंत-दिसंबर 2008 में गिरकर 5.3 प्रतिशत रह गयी। तब से इस प्रवृत्ति में प्रत्यावर्तन हुआ है और वर्तमान कैलेंडर वर्ष के प्रारंभ से सरकार के उधार कार्यक्रमों में बड़ी और अचानक वृद्धि होने की पृष्ठभूमि में प्रतिफल में वृद्धि होने लगी है।

18. इसके विपरीत बैंक जमाराशियों और ऋणों पर ब्याज दरों में निश्चलता का प्रदर्शन हुआ है। जबकि रिज़र्व बैंक ने प्रभावी नीति दर में 575 आधार अंक तक कटौती की, बैंक के बेंचमार्क मूल उधार दरों (बीपीएलआर) में केवल 100-225 आधार अंकों की कटौती देखी गयी। इस निश्चलता ने मौद्रिक संचरण को बाधित किया है और नीतिगत कार्रवाइयों के आशयित प्रभाव को कुंद कर दिया है। बैंकों की ब्याज दर संरचना में निश्चलता के लिए क्या स्पष्टीकरण हो सकता है ?

19. ऐसे अनेक कारक हैं, जो इस निश्चलता के लिए कारण बनते हैं - लघु बचत लिखतों द्वारा प्रदान की गयी ऊंची ब्याज दरें, जो बैंकों को जमा-दरें घटाने से हतोत्साहित करती हैं, पूर्व में कठोर मौद्रिक नीतिगत व्यवस्था के दौरान बैंकों द्वारा जुटायी गयी जमाराशियों की ऊंची लागत, जिसने उनकी भारित औसत लागत को बढ़ा दिया, और बड़े सरकारी उधार कार्यक्रम, जिन्होंने प्रतिभूतियों के प्रतिफल में वृद्धि की।

20. ये कारक, जिन्होंने मौद्रिक संचरण को बाधित किया, संकट के पहले भी बने हुए थे। आगे बढ़ते हुए एक निश्चित कार्य यह होगा कि मौद्रिक नीति के संचरण की बाधाओं पर ध्यान दिया जाये।

चौथी चिंता : राजकोषीय प्रोत्साहन -

प्रत्याहरण और समायोजन की गुणवत्ता

21. अन्य अर्थव्यवस्थाओं की ही भांति राजकोषीय प्रोत्साहन उपायों और आर्थिक कार्यकलाप की दुर्बलता ने हमारे राजकोषीय घाटे को काफी बढ़ाया है। बजट में केंद्र सरकार का राजकोषीय घाटा वर्ष 2007-08 में जीडीपी के 2.7 प्रतिशत से बढ़कर 2009-10 में 6.8 प्रतिशत हो जाने का अनुमान लगाया गया है; केंद्र और राज्यों का संयुक्त राजकोषीय घाटा इसी अवधि में जीडीपी के 4.2 प्रतिशत से बढ़कर 10.2 प्रतिशत हो जाने का अनुमान है। ये घाटे बड़े हैं और इन्हें कम किये जाने की आवश्यकता है । समायोजन के लिए क्या गुंजाइश है ? हमें पिछले अनुभवों से क्या सीख मिलती है ?

22. राजकोषीय जवाबदेही तथा बजट प्रबंध (एफआरबीएम) अधिनियम द्वारा अनुशासन आरोपित किये जाने के परिणामस्वरूप केंद्र का राजकोषीय घाटा वर्ष 2001-02 में जीडीपी के 6.2 प्रतिशत से कम होकर वर्ष 2007-08 में 2.7 प्रतिशत हुआ। इसी अवधि में राज्यों का घाटा जीडीपी के 4.1 प्रतिशत से कम होकर 1.5 प्रतिशत हुआ। इस प्रकार हमने अपेक्षाकृत छोटी अवधि में

बड़ा समायोजन होते हुए देखा। राजकोषीय समायोजन के पिछले अनुभव से हम आशा करते हैं कि हम हाल के राजकोषीय घाटे को कम करने में समर्थ होंगे। ऐसा एकांगी दृष्टिक ाटण भ्रामक हो सकता है। हमारे राजकोषीय घाटे का एक बड़ा हिस्सा संरचनात्मक है न कि चक्रीय। यह भी, कि हमारे राजकोषीय समेकन का कम से कम एक भाग उच्च वृद्धि का परिणाम है न कि राजकोषीय समेकन के कारण उच्च वृद्धि हुई है। इसकी अभिस्वीकृति महत्वपूर्ण है, ताकि समस्या का निर्धारण किया जा सके और चुनौती की विशालता क ा मूल्यांकन किया जा सके।

23. इस संदर्भ में तीन मुद्दे महत्वपूर्ण हैं। पहला, 'एक चक्र पर राजकोषीय समायोजन' की यह अवधारणा हमारे लिए अनुपयुक्त है। एक चक्र पर समायोजन परिपक्व और उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के लिए होता है। वहां भी यह काम नहीं करता है - उदाहरण के लिए यू.के. आर्थिक चक्र के सर्वोच्च स्तर पर सर्वाधिक राजकोषीय घाटा झेल रहा था। हम एक ही फार्मूले पर बने रहकर और स्वयं को वार्षिक, अनम्य लक्ष्यों से आबद्ध रखकर सबसे सुरक्षित रह सकते हैं। यह राजकोषीय समायोजन को जनतांत्रिक दबावों से अलग रखने का एक कुंद किन्तु सुरक्षित मार्ग है। दूसरा, हमें राजकोषीय समेकन की गुणवत्ता पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, न कि केवल संख्यात्मक लक्ष्य का पीछा करना चाहिए। केंद्र सरकार के लिए जीडीपी के प्रति पूंजीगत परिव्यय का अनुपात 1990 के दशक के आरंभ से 1 और 2 प्रतिशत के बीच ही बना हुआ है, जबकि उससे पहले के दशक में यह लगभग 2-3 प्रतिशत रहा था। तीसरा, हम आराम से बैठकर यह आशा नहीं कर सकते कि कर-बढ़ोतरी कर देने से राजकोषीय समेकन अपने आप हमें प्राप्त हो जायेगा। राजस्व व्यय, जो वर्ष 2008-09 की अवधि के दौरान जीडीपी का लगभग 12 प्रतिशत था, वह अब बढ़कर 15 प्रतिशत से अधिक हो गया है। हमें व्यय कम करने के संबंध में गंभीरतापूर्वक कार्य करने की आवश्यकता है। यह कार्य राजनीतिक दृष्टि से केंद्र और राज्य, दोनों स्तर पर, चुनौतीपूर्ण है, लेकिन फिर भी इसे करने की आवश्यकता है।

पांचवीं चिंता : वित्तीय स्थिरता,

वित्तीय समावेशन और वृद्धि

24. अंतिम चिंता, जिस पर मैं बात करना चाहता हूं, वह वित्तीय समावेशन से संबंधित है।

25. संकट की विकरालता को देखते हुए वित्तीय क्षेत्र विनियम क ाट अंतरराष्ट्रीय निकायों, यथा, बीसीबीएस और एफएसबी, के तत्वावधान में कठोर बनाया जा रहा है। ऐसे प्रस्ताव हैं, जो बैंकों की आरक्षित निधि आवश्यकताओं को बढ़ा देंगे। चलनिधि संबंधी आवश्यकताओं के लिए भी नये विनियम बनाये जा रहे हैं। यह प्रस्ताव भी है कि बैंकों से कहा जाये कि वे सरकारी प्रतिभूतियां रखें। इन उपायों में से अनेक उपाय आवश्यक हैं। लेकिन हमें यह समझना होगा कि ऐसे सभी प्रस्तावों का प्रभाव बैंकों की निधीयन लागत के बढ़ने के रूप में होगा, जिसके कारण उधार दरें उच्चतर हो जाएंगी। इस प्रकार की उच्च लागत के प्रति बैंकों की क्या प्रतिक्रिया होगी ? क्या इससे समाज के गरीब और अन्य जरूरतमंद तबके के प्रति बैंकों के सामाजिक दायित्व का क्षरण होगा ? भारत जैसी अर्थव्यवस्थाओं में आबादी का एक बड़ा भाग वित्तीय रूप से बहिष्कृत है। हमें यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता होगी कि चालू विनियामक व्यवस्था के कठोर रुख से वित्तीय समावेशन के प्रयासों पर प्रतिकूल असर न पड़े।

26. वित्तीय स्थिरता को सुरक्षित रखने के लिए हमने परंपरागत रूप से अनेक विवेकपूर्ण उपायों का प्रयोग किया है, यथा, एक्सपोजर मानदंडों को विनिर्दिष्ट करना और जोखिम भार एवं प्रावधानन अपेक्षाओं को पहले से ही अधिकृत कठोरता प्रदान करना।

लेकिन, ये उपाय हमेशा बिना लागत के नहीं होते। उदाहरण के लिए यह तर्कसाध्य है कि जोखिम भार को कठोर बनाये जाने से कुछ क्षेत्रों को ऋण-प्रवाह में कमी आएगी, जबकि समयपूर्व या अनावश्यक कठोरता वृद्धि को कुंद कर दे सकती है। इसी प्रकार, एक्सपोजर मानदंड संकेंद्रण जोखिम से सुरक्षा प्रदान करते हैं; तथापि, ऐसी सीमाएं महत्वपूर्ण विकास-क्षेत्रों के लिए ऋण की उपलब्धता को सीमित कर देती हैं। यह हमारे देश में आधारभूत संरचना के वित्तपोषण की अपरिमित आवश्यकताओं के संदर्भ में एक जीवंत मुद्दा है। इस प्रकार, जैसाकि मूल्य स्थिरता के मामले में होता है, केंद्रीय बैंक वित्तीय स्थिरता और वृद्धि के बीच समझौताकारी समन्वयन का प्रबंध करने की चुनौती का सामना करते हैं।

27. इस तथ्य को समझने की आवश्यकता है कि किसी संकट के टल जाने बाद, पीछे मुड़कर देखने पर, सभी रूढ़िवादी नीतियां उचित प्रतीत होती हैं। लेकिन किसी भावी संकट से बच निकलने के लिए तैयार रहने में अत्यधिक रूढ़वादिता वृद्धि और वित्तीय नवोन्मेष को विफल कर दे सकती है। प्रश्न यह है कि हम क्या कीमत चुकाना चाहते हैं, दूसरे शब्दों में , किसी विरल घटना को रोकने के लिए हम किस भावी लाभ का त्याग करना चाहते हैं ? अनुभव बताता है कि इस चुनौती का प्रबंध करने के लिए, अर्थात्, यह निर्धारित करने के लिए कि कब और कितनी कठोरता का प्रयोग किया जाये, यह प्रश्न विश्लेषणात्मक कौशल की बजाय उत्तम विवेक का है। यह विवेकोचित कौशल ऐसा है, जिसे वृद्धि और वित्तीय स्थिरता दोनों लक्ष्यों का अनुसरण करने वाले, खासकर भारत जैसे विकासशील देशों के केंद्रीय बैंकों में सान पर चढ़ाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

आपको बहुत धन्यवाद कि आपने इस मंच से मुझे उभरती अर्थव्यवस्थाओं की चिंताओं के बारे में कुछ कहने का अवसर उस समय प्रदान किया, जब हम संकट का प्रबंध करने से बहाली का प्रबंध करने की ओर बढ़ रहे हैं।